हुसैन अलैहिस्सलाम और हम

अल्लामा नज्म आफन्दी साहब (ताबा सराह)

क्या हुसैन (अ0) की अज़ीमुश्शान शहादत का राज़ कुछ रुख़सारों पर बहने वाले आँसुओं में छुपा है, क्या चालीस रोज़ सीनाज़नी और एक रोज़ की फाक़ाकशी हुसैन (अ0) की अदमुल मिसाल कुर्बानी का नतीजा हो सकती है?

क्या कर्बला के दिल हिला देने वाले तास्सुरात की दुनिया इस क़दर महदूद समझी जाए? क्या हुसैन (अ0) और हुसैन (अ0) के बच्चों का ख़ून सिर्फ इस मक़सद के लिए पानी की तरह बहाया गया था कि एक रोने वाला गिरोह तैयार किया जाए?

बराए ख़ुदा यह कौन सा फलसफा है कि हुसैन (अ0) इसलिए शहीद किए जाएँ कि हुसैन (अ0) पर रोने वाले पैदा हों।

क्या हमारी सियाहकारियों के दफ्तर धोने के लिए हुसैन के ख़ून की ज़रूरत थी। कौन है जो इन सवालों का जवाब हाँ में दे सकता है?

हुसैन (अ0) को क्यों शहीद किया गया?................हुसैन (अ0) दुनिया से क्या चाहते थे? हुसैन (अ0) से दुनिया क्या चाहती थी?.................हुसैन (अ0) ने यह कुर्बानियाँ क्यों गवारा कीं?

क्या सिर्फ हुसैन (अ0) पर रोना हुसैन (अ0) की मेहनत का सही एतराफ है। हुसैन (अ0) के करोड़ों मातम करने वालों में कितने लोग हैं जिन्होंने कभी इन मसाएल पर ग़ौर करने की तकलीफ बर्दाश्त की है? यह दो चार सवाल हैं जिन पर इस शहीदे आज़म की यादगार में क़लम उठाने की जुराअत कर रहा हूँ। हुसैन (अ0) को क्यों शहीद किया गया? यह कोई राज़ नहीं है, न कोई ऐसा पुरपेच मसला है जिस पर बड़ी–बड़ी मोटी किताबें लिखने की ज़रूरत हो। हुसैन के क़ब्ज़े में कोई सलतनत न थी जिसके लिए किसी हुकूमत के ख़िलाफ तलवार उठायी थी। न कोई पोशीदा रेशादवानी की थी। हुसैन (अ0) एक अच्छे आदमी होकर रहे।

यही उनकी शहादत का क़वी सबब था। अगर हुसैन (अ0) (मआज़ल्लाह) बुरे हो सकते, बुरे बनाए जा सकते, तो हुकूमत की तलवार उनकी गर्दन से दूर रहती। मुझे कोई पेचदार बात कहनी नहीं है मैं जो कहूँगा सादे लफ्ज़ों में और सामने की बात जिसके लिए न क़लम की मअरका आराई दरकार है न मन्तिक़ी दलाएल। हुसैन (अ0) दुनिया से क्या चाहते थे? हुसैन दुनिया से अपने लिए कुछ नहीं चाहते थे। दुनिया के पास हुसैन (अ0) के क़ाबिल कुछ न था। हुसैन (अ0) के पास वह सब कुछ था जो दुनिया के पास न था और जिसकी दुनिया को ज़रूरत थी। हुसैन (अ0) इन्सान को सही माने में इन्सान देखना चाहते थे। हुसैन (अ0) से दुनिया क्या चाहती थी। यह कि हुसैन (अ0) भी हम में से एक फर्द हो जाएँ। हुसैन की हस्ती सिर्फ क़ौल से ही नहीं अमल से भी यह बताती थी कि ख़ुदा है और यह ख़तरनाक था उन लोगों के लिए जिनकी मसलेहत यह चाहती थी कि ख़ुदा नहीं है। कहाँ यह जज़्बा

कि हमारे लिए सब कुछ हो, कहाँ यह तालीम कि सबके लिए हो चाहे तुम्हारे लिए कुछ न हो। हुसैन (अ0) शहनशीनों को मेहराबे इबादत बनाना चाहते थे। लोग थे कि मेहराबे इबादत में दर्जे क़ायम कर रहे थे। मसावात का लफ्ज़ भी उन लोगों के लिए कड़वा था जिनकी ज़बानों को चटख़ारे लेने की आदत थी, जिनकी गर्दनें बुलन्द थीं, जिनके पेट भरे हुए थे, जिनका मक़ोला था 'तुम बाग़ लगाओ हम फल खाएँ' हुसैन (अ0) उनको गले से लगाकर जिनकी कमज़ोर गर्दनों पर लोग सवार थे, इस्लाम की उस तालीम को याद दिलाते थे जिसके भुलाने की कोशिश में पचास साल का लम्बा ज़माना ख़र्च किया गया था।

अमन व आमान के शहज़ादे हुसैन (अ0) की ख़ामोश जद्दोजेहद, ख़ून की बारिश और तलवारों की झंकारों से न बदलती अगर हुसैन (अ0) से यह चाहा जाता कि तुम भी तस्दीक़ कर दो जो कुछ हम कर रहे हैं वह हक़ है।

और हुसैन (अ0) ने यह कुर्बानियाँ क्यों गवारा की इसलिए कि किसी क़ौम के एहसासात जब मुर्दा हो जाते हैं तो जान देकर ज़िन्दा किये जाते हैं। तुम महकूम बनने के लिए पैदा किये गये हो जो हम दें वह ले लो। ग़नीमत यह है कि हम तुमको इस फिज़ा में साँस लेने देते हैं जिसमें हम साँस ले रहे हैं, हमारी आँखों से देखो, हमारे कानों से सुनो और हमारी ज़बान से बोलो। इस माहोल और आबो हवा में परवरिश पाए हुए लोगों की इस्लाह कोई आसान काम न था। हुसैन (अ0) आने वाले ख़तरे से आगाह थे और अगर मा फौकुलआदत कुव्वत से नज़र भी हटा ली जाए तो आसार व क़राएन बता रहे थे कि वह होने वाला है जो हुआ। हुसैन के पास वक़्त भी था और रास्ते भी खुले हुए थे सिर्फ इराक़ का रास्ता न था। मुमकिन था कि हुसैन (अ0) अरब के हुदूद से निकल जाते।

लेकिन यह हुसैन (अ0) ने नहीं किया। हुसैन (अ0) अगर मिनजानिब अल्लाह हिदायते ख़ल्क़ के लिए मामूर न भी होते तब भी दो बड़े सबब थे कि वह इस कुर्बानी के लिए अपने आपको तैयार करें।

क़ौम जो बिगड़ रही थी वह हुसैन (अ0) के नाना की बनायी हुई थी। यह भी न होता जब सुक़रात ख़ल्कुल्लाह की ख़िदमत के लिए ज़हर का जाम पी सकता है तो हुसैन (अ0) तो फिर हुसैन (अ0) थे। मदीने में बैठकर मौत का इन्तिज़ार नहीं किया बल्कि कर्बला तक इस्तेक़बाल किया यह हुसैन की सोंच थी कि उन्होंने अपनी शहादत के लिए कर्बला को पसन्द किया। कुछ लोगों ने हमदर्दी से हुसैन को रोका था कि मदीना न छोड़ें लेकिन हुसैन जानते थे कि बफर्ज़े मुहाल रसूल (स0) के रौज़े का एहतेराम भी किया गया (जिसके बज़ाहिर कोई आसार न थे) तो ज़हर का प्याला तैयार हो सकता था। मदीने की मस्जिद मौजूद थी, लेकिन किसी इब्ने मुल्जिम का मिल जाना भी नामुमकिन न था और क़ुतामा भी दस्तयाब हो सकती थी। और फिर तारीख़ सिर्फ दो लफ्ज़ों में हुसैन की शहादत का तज़किरा करके खामोश हो जाती और हुसैन (अ0) अपनी शहादत से जो काम लेना और जो असर पैदा करना चाहते थे वह न होता। असर पैदा करना मक़सूद था सिर्फ इतना ही नहीं कि क़ौम यह फैसला कर सके कि हुसैन (अ0) हक़ पर थे और यज़ीद नाहक़ पर, आलमगीर असर क़ाएम करना था, एक ऐसी हुकूमत के ख़िलाफ जो आज़ादों को गुलाम बना रही थी, क़ौम की तबाही अख़लाक़ के ज़िम्मेदार और अपनी मसलहतों के मातहत इस तबाही व

बर्बादी की तकमील की कोशिशों में सरगर्म थी, वह जज़्बात जिन्हें ग़ैरत व हमियत के नाम से मौसूम किया जाता है और जो क़ौमों को उभारते हैं, बतदरीज फना होते जा रहे थे। लोग भूल चुके थे कि आज़ादी हमारा फितरी हक़ है। नतीजा यह होता कि इस्लाम ने यही सिखाया था, हुसैन (अ0) की शहादत ने यह बता दिया बल्कि ज़हन नशीन कर दिया कि इस्लाम ने क्या सिखाया था। अब तुम कितनी ही तारीकी फैलाओ देखने वाले इस्लाम को हुसैन (अ0) की रोशनी में देख लेंगे। क्या सिर्फ हुसैन (अ0) पर रोना हुसैन (अ0) की मेहनत का सही एतराफ है।

मेरा असल मौज़ू यही है और मुझे इसी के मुताल्लिक़ कुछ कहना है। अगर क़ौम ठण्डे दिल से इस सवाल पर ग़ौर करे ''क्या सिर्फ हुसैन (अ0) पर रोना हुसैन (अ0) का सही एतराफ है'' तो बहुत मुश्किल है कि फैसला ''हाँ'' पर हो सके।

हम ने (हुसैन अ0 की मातमदार क़ौम ने) ''हुसैन (अ0) के केरेक्टर से क्या असर लिया है'' ''गिरया'' हुसैन (अ0) का नाम सुनकर रो दो लेकिन हुसैन (अ0) के अमल और उन तवक़्क़ोआत से जो हुसैन (अ0) के नाम से वाबस्ता हैं कोई सरोकार न रखो। मज्लिसों को शाएरी का मैदान, दिलचस्प शाएराना सलीस तक़रीरों का मरकज़, सोज़ख़्वानी और नौहाख़्वानी का दंगल बना दो। यह हुसैन (अ0) की कुर्बानियों का माहसल है? जिस क़ौम में इतना बड़ा और अहम वाक़ेआ हो जाए जो एक आलम को दावते अमल दे रहा हो, तारीख़ जिसकी मिसाल न पेश कर सके, जिसका हर पहलू सबक़ लेने वाला और दर्से अमल की बेहतरीन मिसाल है। जो हर साल इस तरह ताज़ा किया जाता है जैसे आज ही का वाक़ेआ है, इस क़ौम से क्या उम्मीद करनी चाहिए। सिर्फ चन्द आँसू!! ज़रा से ग़ौर की ज़रूरत है। कौन सी क़ौम है जिसके हीरो ऐसी जोश पैदा करने वाली मिसाल छोड़ गए हैं। क़ौम बन जाती अगर जोश से काम लिया जाता और सीनाज़नी तक महदूद न रहता। इस से ज़्यादा किसी क़ौम व मिल्लत की बदनसीबी क्या हो सकती है कि कर्बला का सा अहम वाक़ेआ एक मज़हबी रस्म बन जाए। मैं मज्लिस व मातम, अलम व ज़रीह, मातमी जुलूस वग़ैरा का मुख़ालिफ नहीं हूँ, ख़ुद अज़ादार हूँ, मेरे घर में अज़ादारी होती है, मेरा अक़ीदा है कि यह मातमी जुलूस क़ौमों को हुसैन (अ0) और हुसैन (अ0) के ज़रिए से इस्लाम की तरफ ध्यान दिलाने के लिए बेहतरीन चीज़ें हैं। मुझे तारीख़ दानी का दावा नहीं, मैं एतमाद के साथ कह सकता हूँ कि यह मुज़ाहेरे का ज़बरदस्त उसूल हम शीओं की ईजाद है मगर कम से कम ऐसा यह पुरअसर और शानदार मुज़ाहेरा किसी दूसरी क़ौम में नहीं देखा गया। इस क़ौम को क्या कुछ न होना चाहिए था और यही क़ौम आज कुछ नहीं है।

मैं यहाँ क़ौम की अख़लाक़ी हालत, आपस के बर्ताव, रवादारी, उमरा व ग़ुरबा के ताल्लुक़ात, उनकी ज़हनियत इन मामलों पर तबसेरा नहीं करूँगा इस के लिए एक दफ्तर की ज़रूरत है। मुझे सिर्फ चन्द क़ौमी मसाएल का ज़िक्र करना है और बस। हुसैन (अ0) मज़लूम और यज़ीद की जंग हक़ और नाहक़ की जंग थी। हम हक़ के तरफदार हैं और हुसैन के इसलिए मद्दाह हैं कि वह हक़ पर अड़ गए और हक़ के लिए अपनी ही जान नहीं बल्कि अपनी जान से ज़्यादा अज़ीज़ जानें भी कुर्बान कर दीं। लेकिन अमल तो दरकिनार आज हम में इतनी अख़लाक़ी जुराअत नहीं कि

(बक़िया पेज 23 पर)

रस्सियों में जकड़ी बीबियों को देखकर क़हक़हे लगाता था।

फतह के बाजों की आवाज़ें दरबार के अन्दर आ रही थीं। यज़ीद ने रसूल (स0) की नवासी, अली (अ0) व फातिमा (स0) की बेटी, हुसैन (अ0) व अब्बास (अ0) की बहन ज़ैनब से कहा यह बाजों की आवाज़ें सुन रही हो, अब बताओ कि कौन जीता और कौन हारा। बहादर बाप की शेर दिल बेटी ने इन्तिहाई ख़ुदएतमादी के साथ जवाब दिया कि कौन हारा, कौन जीता यह अगर देखना है तो ज़रा ठहर जा। अभी मस्जिदों के मीनारों अज़ान की आवाज़ बुलन्द होगी अल्लाह की किबरियाई और उसकी वहदानियत की आवाज़ गूँजेगी। हमारी जंग इस आवाज़ को बचाने के लिए थी थोड़ी देर बाद तेरे बाजे बन्द हो जाएँगे मगर आवाज़े अज़ान अब सुब्हे क़यामत तक दुनिया के गोशे–गोशे से बुलन्द होकर अल्लाह की बड़ाई और वहदानियत और रसूल (स0) की रिसालत के एलान के साथ हमारी फतह का भी एलान करती रहेगी। ▯ ▯ ▯

बक़िया...........हुसैन (अ0) और हम

हक़ बात मुँह से निकाल सकें। मसलहतें अबा क़बा की दामनगीर हैं, हक़ बोलने का फल जो दुनिया से मिला करता है फितना व फसाद का लक़ब देकर फितने व फसाद के ख़ौफ की आड़ लिये बैठे हैं।

हुसैन (अ0) की मज्लिस में मोटे–मोटे आँसुओं से रोने वालों और दोनों हाथों से मातम करने वालों के सामने मश्हदे मुक़द्दस का वाक़ेआ भी हुआ, नजफे अशरफ का भी, जन्नतुलबक़ी की बर्बादी भी देख ली, इन्हीं हाथों को वाक़ेआत पर पर्दा डालते और पालीटिक्स की आड़ अवाड़ लगाते भी देखा गया।

हुसैन (अ0) के अन्सार ने हुसैन (अ0) से यह अहद किया था ''चाहे कुछ हो जाए हम हुज़ूर का दामन न छोड़ेंगे'' आज इसी क़ौम के लोग हुसैन (अ0) के ''मातम दार'' ''चाहे कुछ हो जाए'' के पुरज़ोर अलफाज़ के साथ हुकूमत से वफादारी का अहद बाँधते हैं। क्यों? आज हुकूमत व रिआया में हक़ नाहक़ की जंग हो रही है और हमारी क़ौम हमेशा से हक़ की तरफदार रही है।

ज़माने से पस्त और गिरावट की तरफ जा रही क़ौम, जिसमें न कोई स्प्रिट है, न अख़लाक़ी जुराअत तो वह उस वक़्त तक नहीं सम्भल सकती जब तक हुसैन (अ0) की अज़ीमुलमरतबत कुर्बानी के मक़सद से आँख छुपाती रहेगी। हुसैन (अ0) का ख़ून तेरी बुराइयों के दफ्तर धोने के लिए नहीं बहाया गया है। हुसैन (अ0) की शहादत हमारी नजात का ज़रीआ बन गयी है। अक़ीदे की सेहत में कलाम नहीं लेकिन इस तरह नहीं कि चार आँसू बहाए और जन्नत ख़रीद ली। ऐसे लोग भी होंगे जिन्होंने हुसैन (अ0) के हुस्ने अमल की रौश्नी में सही रास्ता मालूम कर लिया वह हुसैन (अ0) की शहादत के मक़सद को समझ गए, उन्होंने हुसैन (अ0)के अख़लाक़ की पैरवी की और हुसैन (अ0) की शहादत उनकी नजात का बाअिस हो गयी। हुसैन (अ0) ने यही चाहा था अब क़ौम जो कुछ समझे।

नज्म कहते हैं शहादत जिसको उर्फ़े आम में
यह हुसैन इब्ने अली का क़ौम को पैग़ाम है

▯ ▯ ▯